

शोध सारांश
प्राचीन दण्ड विधान की वर्तमानकालिक प्रासंगिकता
(संस्कृत साहित्य के आलोक में)

अर्चना जैन
अनुसंधानकर्त्ता

मनुष्य एक बौद्धिक एवं सामाजिक प्राणी है। आपसी सुरक्षा और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसने अपने प्राकृतिक जीवन को त्याग कर समाज के रूप में रहना शुरू किया। समाज में सभी मनुष्य समान रहते हुए स्वतंत्र जीवन यापन करें इसीलिए समाज में मनुष्य के न्यायोचित आचरण के लिए कुछ मानक और मूल्य भी निर्धारित हुए। जिनका पालना करना सभी मनुष्यों के लिए आवश्यक माना गया। किन्तु मानव अपने विवेक के चलते अन्य प्राणियों से भिन्न है। यही विवेक उसे सद् चरित्र भी बनाता है, और इसी विवेक के चलते मनुष्य का चरित्र असामाजिक भी बनता है। जब तक मनुष्य अपने विवेक का प्रयोग करते हुए समाज सम्मत व्यवहार करता है, तब तक सामाजिक व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहती है, किन्तु जब मनुष्य अपने आवेगों यथा अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष अभिनिवेश आदि से संचालित होकर सामाजिक मानकों, मूल्यों, मान्यताओं, प्रथाओं आदि का उल्लंघन करता है तो उसका यही व्यवहार समाज में अपराध को जन्म देता है। यह अपराध न केवल मनुष्य मात्र के लिए अहितकार है, वरन् यह सम्पूर्ण समाज व्यवस्था के लिए भी नुकसानदायक है। अतः अपराधों को रोकने की आवश्यकता प्रारम्भ से ही महसूस की गई, ताकि समाज और सामाजिकता की रक्षा करते हुए मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाया जा सके। मानवीय प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए ही अपराधों के दमन और शमन के लिए दण्ड की आवश्यकता महसूस हुई। इस धारणा पर कि प्रभावी और उचित दण्ड न केवल समाज में न्याय की स्थापना करेगा बल्कि यह समाज में होने वाले अपराधों को भी नियन्त्रित करेगा। मनु, शुक्राचार्य, कौटिल्य, याज्ञवल्क्य, वर्धमान उपाध्याय आदि आचार्यों ने अपनी रचनाओं में दण्ड विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करके दण्ड विधान के महत्त्व और इसकी प्रासंगिकता को स्पष्ट किया, साथ ही इनके विचारों ने तत्कालीन समाज में दण्ड व्यवस्था के निर्धारण में भी उल्लेखनीय योगदान दिया।

समाज में अपराधों का अस्तित्व भी सदा बना रहता है, और उन अपराधों को रोकने वाले दण्ड विधान की प्रासंगिकता भी बनी रहती है। समय के साथ अपराधों के स्वरूप, अपराधों की प्रकृति आदि में बदलाव आया है, लेकिन अपराध से जुड़े सैद्धान्तिक सन्दर्भ वही के वही है। इसीलिए हर काल और परिस्थिति में अपराध और दण्ड का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यह शोध परियोजना इसी पृष्ठभूमि पर आधारित है कि प्राचीन काल के अपराध-दण्ड का वर्तमान कालीन अपराध-दण्ड में किस प्रकार के सम्बन्ध है।

अन्तर् विषयक संदर्भ

प्रस्तुत शोध दो अलग-अलग विषयों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है, जहां इसमें एक और प्राचीन संस्कृत साहित्य में राज्य और शासन से जुड़ी कुछ उल्लेखित व्यवस्थाओं को जानने का प्रयास किया गया है, वहीं इसमें वर्तमान समाज में अपराधों को रोकने के लिए नीति निर्धारकों द्वारा बनाई गई विधियों को भी जानने का प्रयास किया गया है। इससे प्राचीन संस्कृत साहित्य की उपयोगिता भी स्पष्ट होती है। अतः यह प्रस्ताव संस्कृत साहित्य के साथ-साथ समाज विज्ञान से भी अंतर्संबंधित है।

उद्देश्य:- प्रस्तुत शोध का उद्देश्य यह जानना रहा है कि-

- ❖ प्राचीन संस्कृत साहित्य में अपराध को रोकने वाली दण्ड व्यवस्था का स्वरूप किस रूप में उल्लेखित है।
- ❖ वर्तमान में अपराध और दण्ड का स्वरूप प्राचीन कालीन व्यवस्थाओं से किस प्रकार भिन्न है।
- ❖ कार्यप्रणाली में नीति निर्धारकों द्वारा नियम और विधान बनाते वक्त ये साहित्य कितने सहायक हुए हैं, और इन साहित्यों को कैसे नीति निर्धारकों के लिए मार्गदर्शक के रूप में स्थापित किया जा सकता है।
- ❖ प्राचीन दण्ड व्यवस्था वर्तमान में किस प्रकार प्रासंगिक अथवा अप्रासंगिक बन पड़ी है।

यह शोध मुख्यतः द्वैतियक तथ्यों और स्रोतों पर आधारित है। प्राचीन समाज की व्यवस्थाओं को जानने के लिए प्रमुख संस्कृत साहित्य के ग्रंथों का अध्ययन किया गया, साथ ही आधुनिक व्यवस्था से जुड़े प्रावधानों को जानने के लिए भी सम्बन्धित ग्रंथों को सहायक बनाया गया। अध्ययन के उपरान्त व्याख्यात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धतियों का प्रयोग किया गया। यह अध्ययन दो कालों से जुड़ा हुआ है। अतः इसमें तुलनात्मक पद्धतियों का भी यथोचित रूप से उपयोग हुआ है। चूँकि इस प्रस्ताव में आधुनिक काल के अपराधों के संदर्भ में प्राचीन कालीन प्रावधानों की उपयोगिता को जोड़ने का प्रयास किया है। तथ्यों के संकलन के लिए इंटरनेट, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों आदि स्रोतों की सहायता ली गई है।

महत्व:- इस शोध का अपना पर्याप्त महत्व है। किसी भी समाज और संस्कृति के इतिहास का वर्तमान और भविष्य से गहरा सम्बन्ध होता है। यदि वर्तमान में प्राचीन मूल्यों को अपनाया जाए तो संस्कृति का संवहन होता रहता है। इसी संदर्भ में प्राचीन भारतीय समाज में अपराध के संदर्भ में प्रयुक्त दण्ड व्यवस्था प्राचीन साहित्यों में उल्लेखित है। यदि तत्कालीन व्यवस्था के अनुरूप प्रावधान वर्तमान में भी अपनाये जाए तो संस्कृति की भी रक्षा संभव है और समाज में अपराधों की रोकथाम के लिए प्राचीन अनुभवों का लाभ भी लिया जा सकता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध महत्वपूर्ण बन जाता है क्योंकि इसमें प्राचीन समाज में प्रचलित दण्ड विधानों की वर्तमान कालीन अपराध और दण्ड व्यवस्था से तुलना की गई है और यह बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार वर्तमानकालिन अपराध और दण्ड व्यवस्था को प्राचीन प्रावधानों के प्रकाश में आलोकित किया जा सकता है। यह शोध इस आधार पर भी महत्वपूर्ण बन जाता है कि इसके द्वारा भारतीय समाज की मान्यताओं, प्रथाओं, परम्पराओं आदि को पुनर्स्थापित करने की दिशा में कोई सार्थक प्रयास किया जाएगा। आधुनिक साहित्य की चकाचौंध में यह शोध प्रस्ताव प्राचीन संस्कृत साहित्य के प्रति भी विश्लेषकों, नीति निर्धारकों और आम पाठकों का रुझान बढ़ाने में सहायक सिद्ध है।

प्रस्तुत शोध पांच अध्यायों में विभक्त है। शोध परियोजना के प्रथम अध्याय में पूरे शोध का संक्षिप्त परिचय देते हुए शोध विषय के महत्व, साहित्य की पुनर्समीक्षा, शोध अंतराल और शोध के उद्देश्यों को प्रस्तुत किया गया है। संक्षेप में प्रथम अध्याय शोध प्रविधि पर प्रकाश डालता है। किसी भी विषय पर अध्ययन करने के लिए उसके सैद्धांतिक अर्थ को जानना आवश्यक है। इसीलिए शोध के द्वितीय अध्याय में अपराध और दण्ड के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य को रेखंकित करते हुए इनके अर्थ, इनकी आवश्यकता, इनसे जुड़े विभिन्न पक्षों का उल्लेख किया गया है। तृतीय अध्याय में संस्कृत साहित्य में दण्ड और अपराध से जुड़ी व्यवस्थाओं को बताया गया है। मनु, शुक्र, कौटिल्य, गौतम, याज्ञवल्क्य, पाराशर आकद के ग्रंथों के आधार पर यह बताया गया है कि प्राचीनकाल में अपराध के स्वरूप क्या थे, उनकी उल्लंघना पर दण्ड किस प्रकार के थे और अपराध संबंधी प्रमुख मान्यताएं क्या थीं। चतुर्थ अध्याय में वर्तमान में जिस भारतीय दण्ड संहिता को आधार बनाते हुए दण्ड निर्धारित किए गए हैं उनका संक्षिप्त किंतु सारगर्भित चित्रण किया गया है।

अध्याय में विभिन्न धराओं के तहत अलग-अलग प्रकृति के अपराधों और उनसे जुड़ी सजाओं का डल्लेख किया गया है। अंतिम, पंचम अध्याय में यह बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार प्राचीन दण्ड व्यवस्था के प्रावधान वर्तमान में प्रासंगिक और अप्रासंगिक हो रहे हैं।

प्रमुख निष्कर्ष:-

शोध में निष्कर्ष के तौर पर यह बताने का प्रयास किया गया है कि प्राचीन भारतीय समाज में, जैसा कि साहित्यों में उल्लेख है, प्रचलित अपराधों और उनसे जुड़े दण्ड की वर्तमान कालीन दण्ड व्यवस्था से तुलना करें तो हम मुख्यतः दो संदर्भ स्पष्ट होते हैं-

1. प्रासंगिक हुए दण्ड
2. अप्रासंगिक हुए दण्ड

प्रासंगिकता हुए दण्ड :- यह तथ्य सर्वविदित है कि मौटे तौर पर जो अपराध आज होते हैं, वैसे ही अपराध प्राचीन काल में भी होते थे। इतना अवश्य है कि अपराध की तीव्रता, उसके प्रभावों, साधनों में परिवर्तन हुआ है। यहाँ उन अपराधों और उनसे जुड़े दण्ड का उल्लेख किया जा रहा है जो सर्वकालिक प्रासंगिकता रखते हुए वर्तमान में भी विधि व्यवस्था के तहत अपना एक अहम स्थान रखते हैं।

पहले भी शासक विधि अथवा कानून से ऊपर नहीं होता था। उसके द्वारा गलती होने पर उसे भी दण्डित किया जा सकता था। वर्तमान में भी विधि को सर्वोपरी रखते हुए शासक हो या प्रजा, सभ को अपराध करने पर दण्ड का भागी माना जाता है। पहले भी विधि और न्याय व्यवस्था में इस बात पर बल दिया जाता था कि दण्ड्य व्यक्ति दण्ड से मुक्त न हो और अदण्ड्य व्यक्ति दण्डित न हो। आज की विधि व्यवस्था में भी यह सिद्धांत प्रासंगिक बनाए रखते हुए इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि किसी निर्दोष को सजा न हो जाए। प्राचीनकाल में अपशब्द कहना अथवा गाली-गलौच करना अपराध माना जाता था। धमकाने की प्रवृत्ति को भी अपराध ही समझा जाता। किया है। वर्तमान में भी वाक् पारुष्य की तरह शाब्दिक हिंसा अथवा गाली-गलौच अथवा धमकाना अपराध की श्रेणी में ही है और इसे रोकने के लिए दण्ड का प्रावधान ही किया गया है। यह बात उल्लेखनीय है कि प्राचीनकाल में जहां जातिगत श्रेष्ठता को ध्यान में रखते हुए दण्ड की मात्रा का प्रावधान किया गया था। वहीं वर्तमान में जातीय समानता की भावना के आधार पर दण्ड की व्यवस्था की गई है। इसके तहत यदि निम्न समझी जाने वाली जाति के विरुद्ध कोई भी अपशब्द अथवा जाति-सूचक शब्द प्रयुक्त करता है तो यह दण्डनीय अपराध माना गया है।

दण्ड पारुष्य के तहत मारपीट और शारीरिक हिंसा को अपराध मानते हुए दण्ड का प्रावधान किया गया था। आधुनिक दण्ड विधान भी हर प्रकार की शारीरिक हिंसा को अपराध मानते हुए अपराध की प्रकृति के अनुरूप दण्ड की व्यवस्था करता है। जीवों के प्रति सम्मान रखते हुए पशुओं के प्रति की जाने वाली क्रूरता को दण्ड पारुष्य के तहत मानते हुए आर्थिक दण्ड का प्रावधान ही था। वर्तमान दण्ड विधान भी प्राणी मात्र के प्रति दया और सम्मान का भाव रखते हुए पशु हिंसा को दण्डनीय अपराध मानती है। वनस्पति और पर्यावरण के प्रति भी प्राचीन दण्ड विधान में संवेदनशीलता रखते हुए इनको किसी से भी क्षति पहुंचाना दण्डनीय अपराध माना गया है। आधुनिक दण्ड विधान भी विशेषकर पिछले तीन दशकों से पर्यावरण और वनस्पति के संरक्षण हेतु इनसे जुड़े अपराधों के लिए दण्ड के कई प्रावधान करता है। वर्तमान कि न्याय और दण्ड व्यवस्था में चोरों अथवा अथवा अपराधियों का पता लगाने के लिए कई युक्तियाँ और उपाय देखने

को मिलते हैं। ऐसे ही प्रावधान प्राचीन दण्ड विधान में भी नजर आते हैं। अपराध और अपराधी को पहचानने के लिए प्राचीन न्यायिक प्रशासन के तहत गुप्तचर व्यवस्था का विशेष महत्व रहा है। यही गुप्तचर व्यवस्था वर्तमान में भी अपराधियों को पकड़ने के लिए प्रासंगिक नजर आती है।

वर्तमान समाज में इस प्रकार से सफेदपोश अपराधी और उनके अपराध अस्तित्व में है। इसी प्रकार प्राचीन समाज में भी सफेदपोश अपराधों और उससे जुड़े दण्ड देखे जा सकते हैं। प्राचीन दण्ड विधान में यह भी देखने को मिलता है कि तुच्छ वस्तुओं के निर्माण और विक्रय पर राज्य का एकाधिकार रखा गया और यदि कोई उसका उल्लेख करता तो उसके लिए दण्ड का प्रावधान था। वर्तमान में भी इसी भावना के अनुरूप राज्य के एकाधिकार और प्रभुत्व का दमन करने पर अपराधी को दंडित किया जाता है। फर्जी चिकित्सकों मुद्रा से जालसाजी करने वालों, जुआरियों, सट्टेबाजों आदि के सम्बन्ध में प्राचीन दण्ड विधान किसी न किसी प्रकार के दण्ड की व्यवस्था करता है। इन्हीं प्रवृत्तियों वाले व्यवहार को वर्तमान कि दण्ड व्यवस्था में भी अपराध घोषित करते हुए उन्हें दण्डनीय बनाया गया है। समाज में नैतिकता और शुचिता को बनाए रखने के लिए इसे प्रासंगिक माना गया है। न्याय को प्रभावी बनाने के लिए साक्ष्यों (गवाहों) पर भी विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है। झूठे प्रमाणों और साक्ष्यों के साथ ही अन्याय करने वाले न्यायाधीशों को दण्ड का भागी माना गया है।

आत्मरक्षार्थ की गई हत्या प्राचीन विधान के तहत भी क्षम्य मानी गई और वर्तमान व्यवस्था के तहत भी इसे उदारता के दृष्टिकोण से देखा जाता है। सामाजिक जीवन में नैतिकता की अभिवृद्धि के लिए स्त्री संग्रहण को गम्भीर अपराध माना गया है। स्त्रियों के साथ होने वाले व्यभिचार और अमानवीय व्यवहार को प्राचीन दण्ड विधान के साथ ही आधुनिक दण्ड विधान में भी निंदनीय और दण्डनीय अपराध मानता है। प्राचीन साहित्यों में उल्लेखित दण्ड विधान के तहत राजद्रोह को गम्भीर अपराध माना गया है और इसके लिए कड़े से कड़ा दण्ड देने की बात कही गई है। वर्तमान में भी दण्ड व्यवस्था राजद्रोह को अक्षम्य अपराध मानते हुए कठोर दण्ड का समर्थन करती है। प्राचीन भारत में धर्म सम्बन्धी अपराधों के प्रति उदार और सहिष्णुतापूर्ण दृष्टिकोण देखने को मिलता है। फिर भी कुछ धार्मिक अपराधों के लिए दण्ड की व्यवस्था थी। वर्ण और जातिगत भेदभाव की धारणा ने कुछ वर्गों के लिए धार्मिक कृत्यों को निषेध करते हुए उन्हें दण्डनीय बनाया है। वर्तमान समाज में धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक सहिष्णुता का समर्थन तो किया गया है, किन्तु साम्प्रदायिक भावना, धार्मिक उन्माद, कट्टरता आदि के आधार पर होने वाले व्यवहार को अपराध माना गया है। साथ ही सभी जातियों, धर्मों और वर्गों को धार्मिक उपासना और स्वतंत्रता के समान अवसर दिए गए हैं। यदि इस समानता का उल्लंघन होता है तो वह दण्डनीय माना गया है।

प्राचीन दण्ड विधान भी गर्भपात को अपराधिक कृत्य मानते हुए उसके सम्बन्ध में अलग-अलग दण्डों का उल्लेख करते हैं। आधुनिक दण्ड व्यवस्था में भी गर्भपात को एक गम्भीर अपराध मानते हुए उसे दण्डनीय बनाया गया है। प्राचीन विधिशास्त्रियों ने जन-स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति जागरूक रहते हुए कुछ कृत्यों को दण्डनीय अपराध माना है। वर्तमान में भी दण्ड व्यवस्था के तहत जन स्वास्थ्य और स्वच्छता के मद्देनजर बहुत से कृत्यों को उसकी प्रकृति के अनुरूप दण्डनीय माना गया है। न्याय सभी को मिलें और न्याय से सभी संतुष्ट हो इसके लिए प्राचीन विधि व्यवस्था में भी अपील की व्यवस्था थी। निम्न न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अंतिम तौर पर राजा (शासक), जो कि अंतिम न्यायिक अधिकारी माना गया था, के समक्ष प्रार्थना की जा सकती थी। वर्तमान में भी उच्च न्यायालयों में अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील किए जाने का प्रावधान है।

अप्रासंगिक दण्ड :- प्राचीन दण्ड व्यवस्था तत्कालीन मान्यताओं के अनुरूप थी। साहित्य में उल्लेखित व्यवस्था राजतंत्रीय है और राजतंत्रात्मक व्यवस्था में बहुत से दण्ड के प्रावधान ऐसे थे जो अमानवीय और क्रूर कहे जा सकते हैं। न केवल दण्ड के स्वरूप वरन दण्ड की मात्रा में भी कई तरह की विविधताएं दृष्टिगोचर होती हैं। वर्तमान दण्ड व्यवस्था और न्यायिक पहलुओं में अब ये प्राचीन व्यवस्थाएं अप्रासंगिक हो चुकी हैं, इसीलिए वर्तमान दण्ड व्यवस्था में इनको नकारते हुए कोई स्थान प्रदान नहीं किया गया है। संक्षेप में अप्रासंगिक हो चुकी ये व्यवस्थाएं अथवा प्रावधान निम्न हैं –

प्राचीन दण्ड विधान के तहत जातीय श्रेष्ठता की भावना को महत्व देते हुए क्रमशः उच्च से निम्न वर्ग में क्रमशः न्यून से अधिक दण्ड का प्रावधान था। जबकि आधुनिक दण्ड व्यवस्था में समानता और न्याय की पृष्ठभूमि पर सभी के लिए समान अपराध के लिए समान दण्ड की व्यवस्था की गई है। प्राचीन दण्ड व्यवस्था में समाज में निम्न समझे जाने वाले शूद्रों के द्वारा धार्मिक क्रियाओं और संस्कारों को संपादित करने पर भी दण्ड दिया जाता था। प्रायः ये कार्य एक वर्ग विशेष तक सीमित थे, जबकि एक वर्ग विशेष इस सन्दर्भ में वंचनाओं का शिकार थे। वर्तमान में इसे पुर्णतः अप्रासंगिक बना दिया गया है। संविधान ने स्वतंत्रता और समानता के साथ जिस न्याय के आदर्श को स्वीकारा है उसी के अनुरूप अब हम धर्म निरपेक्ष राष्ट्र हुए हैं और इसी धर्मनिरपेक्षता के तहत हर जाति और हर वर्ग को धार्मिक क्रिया करने की स्वतन्त्रता के साथ ही सभी को समान संरक्षण भी प्रदान किया गया है। प्राचीन दण्ड व्यवस्था में वाक् पारुष्य से जुड़े अपराध में अर्थदण्ड का विशेष प्रावधान था। इसी प्रकार के अपराध के लिए वर्तमान कालिक दण्ड व्यवस्था मुख्यतः कारावास (शारीरिक दण्ड) का प्रावधान करती है। प्राचीन दण्ड व्यवस्था में परिजनों और गुरुओं के प्रति निंदा को भी जिस रूप में अपराध मानते हुए दण्ड का प्रावधान किया गया था। वर्तमान में इस व्यवस्था को अप्रासंगिक बना दिया गया है। अंग-भंग प्राचीन दण्ड व्यवस्था का एक अहम भाग था। विभिन्न प्रकृति के अपराधों में शरीर के विभिन्न अंगों को काटने की रीत थी। मानवाधिकारों को महत्व देते हुए और व्यक्ति की गरीमा को ध्यान में रखते हुए हमारे यहाँ वर्तमान दण्ड व्यवस्था में इस प्रकार के दण्डों को अमानवीय मानते हुए पूरी तरह से नकार दिया गया है।

कुछ प्राचीन साहित्य दण्ड पारुष्य में भी अर्थदण्ड का प्रावधान करते हैं। यदि मारपीट में खून न निकले तो अर्थदण्ड देने का प्रावधान भी नजर आता है। किन्तु आधुनिक दण्ड व्यवस्था में मारपीट और शारीरिक हिंसा में अर्थदण्ड के स्थान पर पूर्णरूपेण शारीरिक दण्ड को प्राथमिकता से स्वीकारा गया है। प्राचीन दण्ड विधान पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में होने वाले अपराधों (हिंसा) पर अलग-अलग दण्ड का प्रावधान करता है। किन्तु वर्तमान दण्ड व्यवस्था में पशुओं के प्रति की जाने वाली प्रत्येक हिंसा को दण्डनीय (शारीरिक) माना गया है। प्राचीन दण्ड व्यवस्था में पशु अपराध के सम्बन्ध में दण्ड निर्धारण के लिए पशुओं को होने वाली पीड़ा को भी आधार माना गया है। पीड़ा की मात्रा के अनुरूप दण्ड देने की बात कही गई है। वर्तमान दण्ड व्यवस्था में इस तथ्य को अस्वीकार करते हुए, पशुओं पर की जाने वाली क्रूरता को अपराध मानते हुए समान दण्ड की व्यवस्था की गई है।

मृत्यु दण्ड के सम्बन्ध में देखें तो प्राचीन दण्ड विधान हत्या (वध) के अलावा चोरी और अन्य अपराधों में भी मृत्यु दण्ड का प्रावधान देखने को मिलता है किन्तु वर्तमान की दण्ड व्यवस्था में जघन्य अपराध अथवा राजद्रोह की परिस्थिति में ही मृत्युदण्ड की व्यवस्था की गई है। असमानता के एक अन्य आधार लैंगिक विभेदता को भी प्राचीन दण्ड व्यवस्था में देखा जा सकता है। समान अपराध पर पुरुष और स्त्री को अलग-अलग दण्ड देने की व्यवस्था की जाती है। कई मामलों में स्त्रियों के प्रति इन प्रावधानों में

उदारता भी झलकती है। आधुनिक दण्ड विधान में यह लैंगिक विभेदता पूर्णतया समाप्त कर दी गई है। यदि योग्यता और लापरवाहीवश दुर्घटना में किसी कि मृत्यु हो जाए तो प्राचीन दण्ड विधान व्यवस्था के अनुसार वह मृत्युमारण न होकर चोरी का अपराध माना गया है। किन्तु आज की कानून व्यवस्था में इस बात का समर्थन न करते हुए दुर्घटना के कारणों के अनुरूप अपराध और दण्ड तय है।

कुछ प्राचीन शास्त्र स्त्रियों के प्रति संकीर्ण सोच रखते हुए उनके आचार-विचार और व्यवहार को बहुत मर्यादित करते हैं। इन मर्यादाओं की उल्लंघनाओं को उन्होंने दण्डनीय माना है। जबकि आधुनिक समाज में महिला की स्वतन्त्रता और समता को पुरुषों के समकक्ष रखते हुए महिलाओं को इन प्राचीन रुढ़ियों एवं अतार्किक मर्यादाओं से मुक्त रखते हुए स्त्रियों को स्वतंत्र जीवन जीने का अवसर प्रदान किया है। प्राचीन दण्ड विधान मुख्यतः अवरोधक और निरोधक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही तय होते थे। अब इस उद्देश्य को भी ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता। वर्तमान की दण्ड व्यवस्था में मुख्यतः सुधारात्मक प्रवृत्ति को दण्ड का उद्देश्य बताया गया है। प्राचीन व्यवस्था में सरकार के अंग कार्यपालिका और न्यायपालिका में घनिष्ठ सम्बन्ध देखे जा सकते हैं। आम धारणा यह है कि इन सम्बन्धों के कारण न्यायिक प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। इसीलिए वर्तमान की व्यवस्था में शासक अर्थात् कार्यपालिका को न्यायपालिका से पूर्णतया पृथक कर दिया गया है। प्राचीन काल में न्याय के स्रोत के आधार के रूप में मुख्यतः धर्मशास्त्रों का विशेष महत्व था, वेद, स्मृतियां, उपनिषद् आदि के आधार पर एक 'परिषद्' द्वारा स्पष्टीकरण करने की प्रथा थी। किन्तु वर्तमान में इन धर्मशास्त्रों के स्थान पर विधि की एक संहिता विधि विशेषज्ञों, नीति निर्माताओं आदि के सहयोग से निर्मित की गई है और इसी आधार पर न्याय प्रदान किया जाता है। इस रूप में अब धर्मशास्त्र न्याय का मूलाधार नहीं रहें हैं। न्यायिक प्रक्रिया के तहत प्राचीन विधि में दिव्य प्रमाणों का प्रावधान देखने को मिलता है। जिसमें पानी में रहना, आग पर चलना आदि कृत्यों द्वारा खुद को निर्दोष साबित करने की प्रथा का उल्लेख है। आधुनिक काल में विज्ञान और तर्क को महत्व देते हुए इन सभी प्रमाणों को अप्रासंगिक बना दिया गया है।

सुझाव:-प्राचीन न्याय व्यवस्था और वर्तमानकालिक न्याय व्यवस्था के उपरोक्त तुलनात्मक वर्णन से स्थिति स्पष्ट हो जाती है। आधुनिक समय में समाज, हालात, अपराध आदि के अनुरूप कई दण्ड विधान आज भी उन्हीं मूल भावों को लिए हुए हैं। इन्हीं विधानों को हम प्रासंगिकता के संदर्भ में समझा सकते हैं। इसके विपरीत कई प्राचीन दण्ड विधान वर्तमान समय में अप्रासंगिक हो चुके हैं। फिर भी वर्तमान न्याय व्यवस्था में सुधार के लिए कुछ सुझाव दिए जा सकते हैं जो प्राचीन दण्ड व्यवस्था पर आधारित हैं। कुछ प्रमुख सुझाव निम्न प्रकार से हैं :- वर्तमान की न्याय और विधि को अत्यधिक जटिल, व्ययसाध्य तथा विलम्बशील माना जाता है। इसीलिए कई बार यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई ऐसी प्रणाली या प्रक्रिया हो सकती है जो जन-साधारण को समुचित तथा सरल रूप से विधि का ज्ञान करा सके, तथा शीघ्र एवं स्वल्प व्यय के साथ न्याय दिला सके। इसके लिए आदर्श के रूप में हम प्राचीन न्याय और विधि व्यवस्था से प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं जहां न्याय प्रदान करने में विलम्ब नहीं होता था। प्राचीन न्याय-व्यवस्था में राजकीय कानूनों का सूक्ष्म ज्ञान होना अनिवार्य नहीं था, तब के न्याय को एक प्रकार से प्राकृतिक तथा स्वाभाविक न्याय कह सकते हैं जिसके तहत वादी तथा प्रतिवादी स्वयं ही अपने पक्ष को प्रस्तुत करते थे, इससे वस्तुस्थिति का वास्तविक आकलन होने की संभावना अधिक थी। इस न्यायिक प्रक्रिया के निर्णय में भी विलम्ब नहीं होता था। इस प्रक्रिया में बिचौलिये (वकील आदि) का कोई स्थान नहीं था अतः भ्रष्टाचार की सम्भावना न्यूनतम थी, मुकद्दमों का व्यय भी बहुत कम होता था। वर्तमान में नीति निर्माताओं, विधि विशेषज्ञों, और न्यायिक

प्रशासकों ने न्याय व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में, 'उपभोक्ता-अदालतों', न्यायाधिकरणों और लोक अदालतों का संचालन प्रारम्भ किया है। ये अदालतें प्राचीन पंचायत व्यवस्था का ही परिष्कृत रूप कही जा सकती हैं। इस व्यवस्था में मुकदमों की तुरंत सुनवाई के साथ ही निर्णय होकर जन-सामान्य समय और धन की बर्बादी से बचाया जा सकता है। अतः जरूरत इस बात की है कि न केवल प्राचीन विधि और न्याय-व्यवस्था का वास्तविक रूप यथा संभव स्वीकारा जाये वरन् प्रक्रियाओं के प्रति गम्भीरता को भी प्राथमिकता दी जाए।

प्राचीन दण्ड व्यवस्था के तहत शासक को भी उत्तरदायी बनाते हुए यह प्रावधान था कि यदि शासक चोर को पकड़ने में असमर्थ रहता तो वह पीड़ित व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करता। वर्तमान दण्ड व्यवस्था में इस प्रकार का प्रावधान नजर नहीं आता है। यदि कानून चोर को पकड़ने में असमर्थ रहता है तो नुकसान पीड़ित को ही होता है। पहले राज्य के नियमों के अनुसार व्यापारियों को राज्य द्वारा निर्धारित मूल्यों के अनुरूप ही वस्तुओं को बेचना होता था। अन्यथा उसे दण्ड दिया जाता। यह पूरी तरह से समाजवाद का सुचक है। किंतु वर्तमान में इस संबंध में मिश्रित स्वरूप नजर आता है। कुछ वस्तुओं का मूल्य तो राज्य तय करता है। किंतु अधिकांश वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के लिए व्यापारी स्वतंत्र हैं। बाजार में गला काट प्रतिस्पर्धा देखने को मिलती है। अतः राज्य को इस दिशा में ठोस कदम उठाने चाहिए।

यदि इन सुझावों पर नीति निर्माता नजर डालें और वर्तमान की न्याय व्यवस्था को सुधारने में इन पर अमल करें तो यकिनन न केवल न्याय व्यवस्था सुदृढ़ होगी वरन् प्राचीन साहित्यों और उनमें उल्लेखित संस्कृति का भी संरक्षण और संवर्द्धन होगा। साथ ही संस्कृत साहित्यों की उपयोगिता भी प्रमाणित होगी।